राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना वर्ष 60 जनवरी-मार्च 2014 अंक 1

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय-सूची

जनवरी-मार्च 2014

क्रमांक			पृष्टांक
1.	यही समय गुरु पाँय में	*पलटू साहब की बानी*	01
2.	आध्यात्म विद्या कर सार (भाग-4)	*लालाजी महाराज*	02
3.	आत्मा की वापसी	*डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज*	06
4.	अनमोल वचन	*डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज*	10
5.	कस्तूरी मृग के समान भटको मत	*डा. करतार सिंह जी महाराज*	12
6.	दिव्य देन	*संस्मरण*	23
7.	सुख का मार्ग	*विवेक विचार*	32

आगामी सत्संग समागमों एवं भंडारे की सूचना

1.**श्रेत्रीय सत्संग समारोह**

12, अप्रैल को सासाराम में सुबह और शाम को,
13 और 14 अप्रैल को भभुआ में होगा। सर्म्पक व्यक्ति -
डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव 09431089538, 0938656117
श्री हरीशंकर तिवारी 08804457747, एवं
श्री अवघ बिहारी श्रीवास्तव 09471216555, 09122687030

2. **परम पूज्य गुरुदेव डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की पुण्य तिथि** के अवसर पर 17-18 मई को जयपुर में सत्संग होना निश्चित हुआ है। स्थानः- सामुदायिक केन्द्र, सेक्टर 5, फोर्टिस अस्पताल के पीछे, मालवीय नगर, जवाहरलाल नेहरु मार्ग, जयपुर।
संपर्क व्यक्तिः- श्री विष्णु शर्मा, फोन 09928792193
श्री अशोक हजेला, फोन- 09413842393

3. **परम पूज्य गुरुदेव परम संत डा. करतार सिंह जी साहब की जन्म जयन्ती व पुण्य तिथि** के अवसर पर 13,14,15 जून को टाटानगर में भंडारे का आयोजन किया जा रहा है। स्थान :- आकाशदीप प्लाजा (गोलमुरी) से करीब 300 मीटर पूरब की ओर। यह स्थान रेलवे स्टेशन से 6 कि.मी. (ऑटो किराया100-120रु) और बस स्टैंड से 4 कि.मी. की दूरी पर है (ऑटो किराया 80-100रु)। संपर्क व्यक्ति - श्री जी. सी. पी सिन्हा, 08987516183, श्री आर. सी. पी सिन्हा, 09431180412, श्री आर. एन. राम, 07488511611

4.**गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर** सत्संग का आयोजन बक्सर में 12,13 जुलाई को किया जायेगा। बक्सर में सत्संग स्थल का पता इस प्रकार हैः- नगर भवन, स्टेशन रोड, बक्सर।
संपर्क व्यक्ति- श्री गिरजानंदलाल, फोन, 09308888778, 09386666966, श्री प्यारे मोहनलाल, फोन- 09430927945

सत्संगी भाई-बहन इन समागमों में सादर आमंत्रित हैं। कृपया अपने आने की सूचना सम्बंधित व्यक्तियों को 15 दिन पहले अवश्य दे दें।

-मंत्री, रामाश्रम सत्संग

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डा. करतार सिंह जी

सम्पादक

डा. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 60 जनवरी–मार्च 2014 अंक 01

पलटू साहब की बानी

यही समय गुरु पाँय में गोता लीजे खाय।
गोता लीजे खाय नाम के सरवर माहीं।।
अवधि आय नगिचान दाँव फिर ऐसा नाहीं।।
मानस तन सकरान्त महोदधि जात सिरानी।
ऐसी परवी पाय नहीं तुम महिमा जानी।।
सतसंगत के घाट पैठ के करि असनाना।
तन मन दीजै दान बहुरि नहीं औना जाना।।
पलटू विलम न कीजिये ऐसा औसर पाय।
यही समय गुरु पाँय में गोता लीजे खाय।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अध्यात्म विद्या का सार

साधक झुकेगा अपनी असल की तरफ़

जब इश्क जोर पर आता है और मारफत हो जाती है तो तौहीद (अनेक से एक पर आना) आप से आप भागी आती है। बुलाने की ज़रूरत नहीं होती।

दिल की अंगीठी में इश्क की आग भड़क रही है, जिसको गरज़ हो आकर बुझाये। जलता है जल जायेगा उसकी क्या परवाह है मगर नहीं :–

आग जलती देखकर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिड़क कर, जलती लई बुझाय।।

बच्चा जब रोता है तो माँ हजार काम छोड़कर चली आती है। इसी तरह तलब, इश्क और मारफत के पैदा होते ही तौहीद (एकभाव) आ जाती है और तालिब (तलाश करने वाला) व मतलूब (जिसकी तलाश की जाती है) दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। जब तौहीद पुख्ता हो जाती है तो इस्तग़ना (उपरामता) आ जाती है। एक हालत कभी नहीं रहती। बच्चा बेपरवाह हो गया, माँ को पहिचान लिया। उससे मिलकर एक हो गया। जब वह खेलता फिरता है और माँ बुलाती है तो खिल–खिलाकर हँसता है और आगे दौड़ जाता है। दोनों में खेल हो रहा है। कौन सा खेल? तौहीद का खेल। कोई दुनियावी तौर के नादान यह न कहें कि माँ और बच्चा दो नजर आते हैं। अगर ऐसा कहें तो समझ लो कि उसकी (ज्ञान की) आँखों में बीमारी है जिससे एक चीज़ की दो दिखाई देती है।

बच्चा बढ़ा और बढ़कर अपने आपमें महब (गुम) हो रहा। यही फ़ना है। तौहीद की मंजिल से ऊपर आ गया, ख़ुदी में बेख़ुदी है। कुछ दिनों यह हालत रही, फिर बक़ा (पुनर्जीवन) है। अब उसको पीछे की मंजिल से कोई सरोकार नहीं रहा।

एक मामूली टूटी–फूटी मिसाल से असलियत समझाने की कोशिश की गई है। अगर समझ में आ गई तो ऐन ख़ुशी की बात है, अगर नहीं समझ पाया तो जाने दो अभी बुलंद नज़री (ऊँची दृष्टि) नहीं आई। फिर कभी देखा जायेगा।

एक साहब तसव्वुफ़ पसन्द (सूफी मजहब पसंद करने वाले) ऊपर के मजमून को सुनकर बोले कि 'यह सब सच हो मगर आप हमेशा 'गुरु गुरु' क्यों किया करते हैं, यह सात मंजिलें तय करने में तो गुरु की ज़रूरत ही नहीं होती। वाह! भाई वाह!! यह तो वही मसल हुई जैसे कोई कहे कि बच्चे को माँ की जरूरत नहीं, तालिब (विद्यार्थी) को उस्ताद (शिक्षक) की जरूरत नहीं। मौजूदा हालत में यह ऐसे शख़्सों को मुश्किल है।

बग़ैर गुरु की मदद के रुहानियत (अध्यात्म विद्या) का प्राप्त करना आसान काम नहीं है। माँ अगर न हो तो बच्चे का इश्क पुख़्ता (पक्का) कैसे हो? उस्ताद अगर न हो तो तालिबइल्म (विद्यार्थी) में पुख़्तगी कैसे आवे? इसी तरह अगर रुहानियत (अध्यात्म) का गुरु न हो तो इल्म रुहानियत (अध्यात्म विद्या) कैसे नसीब हो? यहाँ तो कदम–कदम पर सहारा लेने की जरूरत है। मगर ख़ैर कौन ज्यादा समझे।

सुनो, फिर वही बात दुहराई जाती है। तालिब (जिज्ञासु) में रूहानियत (आध्यात्म) की तलब पैदा हुई। वह गुरु की खिदमत में गया और बच्चों की तरह उनके कलाम (वचनों) में से रुहानी ग़िज़ा (आत्मिक आहार) पाने लगा और उससे पलने लगा। मुहब्बत से गुरु का प्रेम पैदा हुआ। प्रेम से उसके असली रूप की पहिचान आई और

इस पहिचान से गुरु की ज़ात (व्यक्तित्व) के साथ यकसू (एकता) होने का मौका हाथ आया। कबीर फरमाते हैं :–

जब मैं था तब गुरु नाहिं, अब गुरु हैं मैं नॉय।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाय।।

अब गुरु–चेला दोनों मिलकर एक हो गये। एक के दिल का असर दूसरे के दिल पर पड़ने लगा। फिर इसके बाद वही उदासीनता या इस्तगना, वही बक़ा और सत्य लोक के दर्जे नसीब हुए।

इतना सुनकर वह साहब बोले, 'फिर अलहदगी हो गई कि नहीं? बेपरवाही आई तो गुरु छूट गये।' भाई तौहीद (दो से एकपना) में जुदाई (अलहदगी) कैसी? पहिले गुरु और चेला दो रूप वाले थे अब तो दोनों इस तरह एक हो गये हैं कि गुरु और चेले तक के भाव का पता नहीं। इस विषय में कबीर साहब की वाणी सुनोः–

सवाल : गुरु हमारा कहाँ है, चेला कहां रहाय।
क्यों करके मिलना हुआ, कैसे बिछुड़े जाये।।

जवाब : गुरु हमारा गगन में, चेला है चित माँय।
सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाँय।।

गुरु नाम है आदर्श का जो चेले के दिमाग व दिल में सतगुरु की ज़ाहिरी सूरत की मदद से दाखिल हो जाता है। उससे जुदाई कैसे हो सकती है? इसी को फ़ना–फ़िल–शेख (गुरु में लय होना) कहते हैं।

ज़ेरे अफ़लाक़ से तुहतुस्सरा के ग़ार में आये।
उतरकर अर्श से, इस दारे नाहिन्जार में आये।।
न तुम समझों के हम दुनियाँ के कारोबार में आये।
गरज़ थी इश्क़ के सौदा से, इस बाज़ार में आये।।
अदम से जानिबे हस्ती तलाशे यार में आये।
हविसे गुल में हम इस वादिये पुरख़ार में आये।।

अर्थ :– आकाश से उतरकर इस मृत्युलोक के गड्ढे में आये। हम जिस ऊँची हालत को लिये हुए थे या जो हमारा असली रूप था

उसको छोड़कर हम इतने नीचे गिरे कि पाशविक वृत्ति में दिखलाई देने लगे। यह मत समझो कि हम इस दुनियाँ के कारोबार में अपने को लगाये हुए हैं। हमारी ग़रज़ तो केवल प्रेम की थी और उसी की तलाश के लिए इस दुनियाँ रूपी बाजार में आये हैं। हमने उस प्यारे प्रीतम की खोज में शून्य से निकलकर यह आकार धारण किया और फूल की तलाश करते करते कांटेदार झाड़ियों में आ फँसे।

आने को दुनियां में चले तो आये। कैसे आये? यह नहीं जानते। आये हैं इतना जानते है। क्यों आये? इसको भी कुछ-कुछ जानते हैं। मगर ज़ाहिर करने की ताकत नहीं है। दिल को किसी चीज़ की ख़्वाहिश (चाह) है, उसकी तलाश है और रात-दिन उसी तलाश में हैरान व परेशान रहते हैं। जिस तरह समुद्र में लहरें कभी आसमान की तरफ जाती है, कभी किनारे से टकराती हैं। इसी तरह की उठक-बैठक में हम भी पड़े रहते हैं। जिस तरह दरिया में गोता लगाने वाला कभी नीचे कभी ऊपर जाता है। हम भी दुनियाँ के दरिया के गोताखोर हैं। तह में घुसते और उभरते रहते हैं। जब तक मोती हाथ नहीं आता इसी कोशिश में पड़े रहते हैं। इसी का नाम जन्म-मरण, द्वन्द की अवस्था व संसार है।

●♦●♦●

हमेशा सुखी रहने का एकमात्र रास्ता है - ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पित होकर सब कुछ 'उसी' पर छोड़ देना, जिस हाल में भी वह रखे उस हाल में संतुष्ट रहना। समर्पण का अर्थ है आंतरिक संतोष एवं शान्ति। समर्पण का मतलब है अहं-भावना का सम्पूर्ण परित्याग। जब तक अहम्-भावना पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाती है, हम परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं।

- स्वामी रामदास जी

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

आत्मा की वापसी

इन्सान एक उल्टा दरख़्त है, जिसकी जड़ सत् खण्ड में है और उसका फैलाव इस दुनियाँ में है। आत्मा में तीन ख़्वाहिशें छिपी हैं।

1. जिन्दा रहने की ख़्वाहिश। 2. ज्ञान प्राप्त करने की ख़्वाहिश।

3. आनन्द प्राप्त करने की ख़्वाहिश।

इन्हीं ख़्वाहिशों की पूर्ति के लिए मनुष्य दुनियाँ की हर चीज़ में फँसता है। उनको अपनाता है और जिनसे ये चीजे़ं हासिल होती है, उनको अपना समझ कर रखने की कोशिश करता है। यह चीज़ ख़ुद आत्मा के अंदर मौजूद है लेकिन किसी वजह से अज्ञानवश होकर आत्मा अपने असली रूप को भूल गई है। उसको चेताने के लिए इस दुनियाँ में भेजा गया है। जैसे आदमी अपना अक्स ख़ुद (स्वयं को) नहीं देख सकता बल्कि अपना रूप देखने के लिए उसे शीशे या पानी या किसी ऐसी अन्य वस्तु की ज़रूरत होती है जिसमें उसका अक्स पड़े और वह उसे दिखे। इसी प्रकार आत्मा को यहाँ भेजा गया है जिससे उसे अपना ज्ञान हो। अगर वह यहाँ न भेजी जाती तो हमेशा अज्ञान की हालत में पड़ी रहती। लेकिन चैतन्य कभी अज्ञान की अवस्था में नहीं पड़ा रह सकता। इसलिए उसको यहाँ आना ज़रूरी था। यहाँ आकर चीज़ों में उसका अक्स पड़ता है और वह अज्ञानवश अपने स्वरूप को उसमें देखकर इन चीजों को अपना रूप समझती है और उनको अपनाती है। लेकिन दुनियाँ की सब चीज़ें नाशवान हैं, एक हालत पर सदा कायम नहीं रहतीं, हमेशा बदलती रहती हैं। एक की होकर नहीं रहतीं, जब वह उससे छिन जाती हैं तो दूसरे की हो जाती हैं या उसका रूप बदल जाता है तब दुःखों का होना जरूरी है।

इस तरह से यद्पि एक मतलब हल हो गया कि सोते से जागृत अवस्था में आ गयी लेकिन अज्ञान अभी दूर नहीं हुआ। दुःख पर दुःख उठाती है। कुछ समझ में आता है लेकिन मन और माया अपने जाल में उसे फिर फँास लेते हैं। इस तरह सैंकड़ों जन्म गुज़र जाते हैं।

सैकड़ों वर्षों के तर्जुबे के बाद उसको ज्ञान होने लगता है कि जिस चीज़ की तलाश है वह उसका अपना ही स्वरूप है। दुख का कारण उसका अज्ञान है। असलियत को समझ कर वह मन और माया से अपना वास्ता सिर्फ़ काम निकालने तक रखती है और सुख, शान्ति, ज्ञान और आनन्द के लिए अपने अंदर की तरफ घुसती है। जितना घुसती जाती है उतनी ही ये तीनों चीज़ें बढ़ती जाती हैं और उसका विश्वास पुख़्ता होता जाता है। जितना विश्वास पुख़्ता होता जाता है उतना ही वह और अंदर घुसती जाती है, और बाहरी वस्तुओं से कार्य मात्र के लिए ताल्लुक रखती है। इस तरह बतदरीज़ (शनै शनै) पूर्ण रूप से एक दिन अपने अंदर स्थिति कर लेती है और बाहरी वस्तुओं से ताल्लुक तोड़ देती है। यही मनुष्य की ज़िन्दगी का मकसद है।

इस मकसद को हासिल करने के लिए यह ज़रूरी है कि इन्सान किसी की हिदायत (आदेश) में ज़िन्दगी गुज़ारे क्योंकि जब इंसान किसी भोग में फँस जाता है तो अव्वल तो उसको बुरा नहीं समझता जब तक कि कोई उसके नुकसान से आगाह न कराये और आगाह हो जाने पर भी उसकी इच्छाशक्ति इतनी कमज़ोर हो जाती है कि बुराईयों को जानने पर भी और उनकी तकलीफों को देखते हुए भी अपने आपको उनसे निकाल नहीं सकता। इसलिए ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है जो इस रास्ते पर चला हो और जिसने अपनी आत्मा को इस प्रपंच से निकाला हो। जो हमारा हमदर्द हो, जिसकी इच्छा शक्ति इतनी प्रबल हो कि हमको मदद दे सके। ऐसे व्यक्ति के मिल जाने के बाद ज़रूरी है कि हम अपनी कठिनाईयों को उसके सामने रखें

उससे कोई बात छिपाकर न रखें। वह जो राय दे उस पर अमल करें, समय–समय पर उसके सत्संग से लाभ उठाते रहें और अपने हाल से उसे सूचित करते रहें।

हम न मालूम किस–किस योनि से गुज़र कर इस मनुष्य चोले में आये हैं और कई योनियों के संस्कार हमारे अंदर मौजूद हैं। एक तरफ आत्मा है और साथ ही साथ पुराने संस्कार भी हैं। पुराने संस्कार नीचे की तरफ ले जाते हैं। हमें नीचे से ऊपर की तरफ चलना है। हमारी ज़िन्दगी इन्द्रिय भोगों से शुरु होती है। हमें आहिस्ता–आहिस्ता तर्जुबा करके मन की वासनाओं को छोड़ना और आत्मा को इन प्रपंचों से छुड़ाना है और नीचे के अंतिम मुकाम से लेकर आखिरी चोटी तक पहुँचाना है। यही हमारा असली घर है। इसलिए तर्जुबा करते हुए जो वस्तु हमें नीचे की ओर या बाहर की ओर खींचे उसे छोड़ना और जो चीज़ें ऊपर या अंदर की ओर जाने में सहायक हों उनको साथ लेना होगा। लेकिन इसमें जल्दी नहीं हो सकती है। शुरु में चींटी की चाल चलना होगा जब तक कि तम और रज से निकल कर आज्ञा चक्र के स्थान पर न आ जाये। इससे ऊपर मकड़ी की चाल चलना है जो त्रिकुटी तक पहुँचाती है। जैसे मकड़ी अपने मुँह से तार निकाल कर छत से उतरती है फिर धरती पर आकर अपना शिकार करके फिर उसी मार्ग से छत पर चली जाती है। इसके बाद मीन मार्ग यानी मछली की सी चाल चलना होगा और यह चाल शून्य अथवा सुन्न के स्थान तक रहती है। उससे ऊपर सत्लोक तक विहंगम चाल चलना है, जैसे पक्षी उड़ते हैं। पक्षी पहाड़ की चोटी से उड़कर धरती पर आ जाते है। संतों का मार्ग विहंगम मार्ग है।

अब सवाल यह पैदा होता है कि दुनिया में रहते हुए हम किसी चीज़ को छोड़कर दुनिया का काम कैसे चला सकते हैं। इसका जवाब यह है कि तमोगुणी वासनाओं को (यानी जो अधर्म की बातें हैं) उनका त्याग तो करना ही होगा। बिना उन्हें छोड़े गुज़ारा नहीं।

रजोगुणी वासनाओं को (यानी दुनियाँ के पदार्थों को प्राप्त करने और इकठ्ठा करने की इच्छाओं को) इतना रखो जितने के बिना काम न चले। सतोगुणी मन की वासनाओं को (यानी धर्म को) अपनाओ। उस पर चलने की कोशिश करो। लेकिन उसको भी अंतिम लक्ष्य मत समझो। उससे भी ऊपर जाओ, अपनी आत्मा को अनुभव करने की कोशिश करो। जहाँ तक वासनाएं हैं, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, मन उनमें लगा हुआ है। जहाँ कोई वासना न हो, बुद्धि शांत हो, तर्क वितर्क न हो, सबमें अपना ही रूप झलके। सबसे प्रेम हो। यही तुम्हारा अपना रूप है। यही ईश्वर प्राप्ति है। इस स्थान पर पूर्ण रूप से स्थिति प्राप्त करो। जरूरी काम वक्त पर किया और फिर अपने स्थान पर आ बैठे। यही तुम्हारी वापसी है, यही अपने असली घर लौटना है।

■■■■

ईश्वर से हर परिस्थिति में चिपके रहो। किसी बात की चिन्ता मत करो। उस पर पूरा-पूरा भरोसा रखो। सभी अंधविश्वास एवं भ्राँतियों को त्याग दो। संसार की तुम्हारे बारे में क्या राय है इसका कोई ख्याल मत करो। पवित्र एवं महान आत्माओं की संगति करो। जब कभी तुम्हारे जीवन में कोई परिवर्तन आये, यह समझ लो कि वे केवल उसकी इच्छा से ही आते हैं। परिवर्तन को स्वाभाविक रूप में एवं खुशी-खुशी अपनाओ।

- स्वामी रामदास जी

गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज के अनमोल वचन

गुरु–सत्‌गुरु

- गुरु की तलाश में एक जन्म भी लग जाये तो कोई हर्ज नहीं। जब गुरु धारण कर लो तो दरवाज़ा छोड़कर मत जाओ। तुम किसके शिष्य बनते हो? क्या आदमी के? नहीं, आप तो ईश्वर को गुरु धारण करते हैं। जिस शरीर में ईश्वर बसता है वह तो मिट्‌टी का बना हुआ है। वह तो मन्दिर है। मन्दिर की पूजा तो नहीं करते, उसके भीतर जो मूर्ति होती है, पूजा उसकी की जाती है।
- दो तरह के आदमी होते हैं। एक जिज्ञासु, दूसरा सत्संगी। जिज्ञासु वो है जो देख रहा है कि कौन सा रास्ता अपनाऊँ। सत्संगी वह है जिसने रास्ता अपना लिया है। यह बाज़ार नहीं है कि एक दुकान देखी, फिर दूसरी देखी और सब जगह का मज़ा चखते रहे। सत्संग में शामिल हो जाने के बाद ऐसा करना ग़लत है। लड़की की शादी हो जाने पर जब वह बहू बन कर ससुराल में जाती है तब सास कुछ दिनों उसके पास रहती है और जब बहू बाल–बच्चों वाली हो जाती है और सयानी हो जाती है तब सास उसके पास नहीं रहती। वह अपने घर में स्वतंत्र है। हमारे सत्संग का भी वही हाल है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसा पति और पतिव्रता पत्नी का। सत्संग में शामिल होने से पहले आपको पूरी आज़ादी है कि ख़ूब घूमिए और जहाँ चाहे वहाँ के सत्संग और उसके अधिष्ठाताओं की जाँच कीजिये। लेकिन जब एक बार इस सत्संग में शामिल हो जायें तब दूसरी जगह नहीं जाना चाहिए वरना नुकसान हो जायेगा।
- पहली शर्त यह है कि गुरु और शिष्य में परस्पर प्रेम हो, मन की दुई मिटकर एक हो जाय, दोनों का सतोगुणी मन मिल जाय, दोनों का तम और रज ख़त्म हो जाय, तब फ़ायदा होगा

वरना (अन्यथा) गुरु कितनी भी कोशिश करे, आत्मा का अनुभव नहीं करा सकता।

- किसी ऐसे महापुरुष का सहारा लो जो इस रास्ते पर चल चुका हो। केवल इतना करो कि संसार भर की चीजों में जो तुम्हारा प्रेम बँटा हुआ है, उसे समेट कर उसके चरणों में लगा दो। यही गुरु धारण करना है। बिना पथ-प्रदर्शक को साथ लिये, बिना गुरु किये, रास्ता तय नहीं होगा। निर्गुण का ध्यान कैसे हो सकता है? इसलिये उस महापुरुष की शरण लो जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उसका स्थूल शरीर मन्दिर है जिसमें निर्गुण परमात्मा विराजता है। उससे प्रेम करने से, उसका ध्यान करने से तुम्हें भी आत्मदर्शन होगा। ●●●

ईश्वर प्राप्ति का यक़ीनी ज़रिया

1. जिक्र ख़फ़ी का जाप किया करें।
2. नाजिन्स, ग़ैर आदमी, और ग़ैर सोहबत के नक्शों से दिल को साफ़ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी और की तरफ तवज़्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाज़िर रखने की तरफ़ पक्का इरादा करें।
5. सत् और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महब और लय हो जायें।
7. इसी काम में अपने आप को मिटा दें।

सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद तक पहुँचने का यकीनी ज़रिया है।

–परम संत महात्मा रामचंद्र जी साहब, फतेहगढ़

<u>प्रवचन परमसंत डा.करतार सिंह जी साहब</u>

नाभि में छिपी कस्तूरी से अनजान मृग के समान भटको मत

परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया। फ़ारसी में इस को कहते हैं 'अर्शख़ उल मुरक्का' यानी सब से अर्शख़ (सबसे बढ़िया)। संसार पैदा किया परन्तु मनुष्य को अर्शख़ (सर्वोत्तम) रखा है। उसे अपने जैसा ही बनाया है। प्रभु तो सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं। उन्होंने मनुष्य को भी अपने जैसा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप बनाया है। वास्तव में यही मनुष्य का रूप है। परन्तु आज प्रत्येक मनुष्य पागल सा हो रहा है, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जो भगवान शिव की तरह शांत हो। भगवान विष्णु की तरह शांत हो – जो नाग शैया पर विराजमान हैं परन्तु शांत हैं। यह है प्रभु का स्वरूप और हमारी स्थिति यह है कि हम भीतर से जल रहे हैं। बहुत कम लोग हैं जो भीतर में शांत हैं। अधिकांश मानव व्याकुल हैं, पागल हो रहे हैं।

जीव तो और भी उत्पन्न किये भगवान ने परन्तु मनुष्य को सबसे अधिक बुद्धि दी है। उतना ही यह विचलित हो रहा है, पागल हो रहा है। यह नहीं कि मनुष्य को पता नहीं कि उसका कर्त्तव्य क्या है, किस प्रकार वह अपने निज स्वरूप में– 'सत्-चित्-आनन्द' स्वरूप में रह सकता है। परमात्मा ने तो प्रत्येक व्यक्ति को बुद्धि दी है, वह ऐसा कर सकता है, परन्तु वह कर नहीं पाता है। यही संग्राम भीतर में चल रहा है। सब के भीतर में हिरन की कस्तूरी की भाँति परमात्मा (आत्मा) है परन्तु वह उसे पहचान नहीं पाता। आपने कहीं दूर नहीं जाना है वह तो अपने पास ही है, चौबीसों घंटे हमारे पास

रहता है। कितना विचित्र लीला है परमात्मा की, कि वह आत्मा के रूप में निरन्तर हमारे भीतर बैठा हुआ है और हम उसकी अनुभूति नहीं कर पाते। वह हमारा रूप ही है और हम अपने रूप को देख नहीं पाते।

वह लोग भाग्यशाली हैं जिन के मन में यह समझने की भावना उत्पन्न होती है। जिनके हृदय में विरह के विचार उठते हैं, अज्ञान को दूर करके ज्ञान की तरफ बढ़ने का साहस होता है, वह भाग्यशाली हैं। परन्तु सब समस्याओं में उलझे हुए हैं। रोज़ ही पत्र आते हैं, भाई लोग भी बाहर से आते रहते हैं, यहाँ के लोग भी हैं। मुख्य तौर से सब का एक ही कहना होता है कि 'कब तक हम कीचड़ में फँसे रहेंगे? हम प्रयास भी करते हैं परन्तु इस कीचड़ से निकल नहीं पा रहे हैं।' यह प्रायः सभी की समस्या है– मैं हूँ, आप हों, या अन्य पुरुष हों और यह आज की समस्या नहीं है आदिकाल से है। जिन साधकों के भीतर में यह उत्कंठा लग गई है, समझ लो कि वह परमार्थ के रास्ते के अधिकारी बन रहे हैं। नहीं तो लोगबाग सुबह उठे, खाया पिया, काम किया, रात को टी. वी. देखा–सुना और सो गए। यही सबकी दिनचर्या बन चुकी है। ऐसे लोग कीचड़ में से कैसे निकल सकते हैं। जिन के मन में यह चाहत आ गयी है कि "प्रभु, मोय कब गले लगाओगे" वह भाग्यवान हैं। परन्तु यह भाव केवल पढ़े सुने नहीं, इसके लिये कुछ करें भी। यह शब्द स्वाभाविक और सहज रूप से हमारे हृदय से निकलें तो ठीक है।

महापुरुषों की वाणी बड़ी पवित्र वाणी है उसके पढ़ने से भी प्रेरणा मिलती है। फ़रीद साहब कहते हैं – 'जिसके हृदय में विरह उत्पन्न नहीं हुई उसकी गरदन काट देनी चाहिए'। यह बहुत हद तक सही है ग़लत नहीं है। मन में विरह उत्पन्न होती ही नहीं। यह फ़रीद जी का वचन कह दिया या अन्य महापुरुषों के प्रवचन पढ़ लिये, या कविता गा ली या पवित्र वाणी पढ़ ली उससे काम नहीं चलेगा।

प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक चुनौती है कि तुम्हारी मृत्यु किसी वक्त भी हो सकती है। मृत्यु से पहले अपने आप को निर्मल करना है, असली गंगा स्नान करना है– अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करना है। जब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता, ईश्वर के दर्शन नहीं होते, तब तक हमारे मन की वृत्तियाँ (Tendencies), भी ख़त्म नहीं हो सकती हैं। हाँ धीरे–धीरे कम हो सकती हैं।

परन्तु व्यक्ति चाहता है कि आज ही उसके संस्कार या वृत्तियाँ सब खत्म हो जाऐं पर ऐसा नहीं हो पाता तो वह निराश हो जाता है– कहता है 'हमें सत्संग में जाते–जाते पच्चीस–तीस साल हो गये पर उन्नति के आसार नज़र नहीं आते'। ठीक है, सत्संग का भी दोष हो सकता है, जो सत्संग कराता है उसका भी दोष हो सकता है। परन्तु जिम्मेवार तो हम स्वयं हैं। 'मैं कौन हूँ मेरा मन, मेरा अतीत क्या है?' इसे अच्छी तरह से समझिये। यह अतीत एक दिन का नहीं है। जन्म–जन्मांतरों के संस्कार चित्त पर अंकित होते रहे हैं और उन अंकित संस्कारों के परिणाम स्वरूप हमारी वृत्तियाँ, स्वभाव, व्यवहार, इच्छायें, राग–द्वेष आदि पैदा होते हैं। इसीलिये एक दिन में चित्त निर्मल हो जाना असम्भव है। तब भी मनुष्य को अपनी विवेक–बुद्धि से, जो हमें परमात्मा ने दी है, प्रयास जारी रखना चाहिए। कब शिखर पर पहुँचेंगे इसकी चिन्ता न करें – चढ़ना तो जारी रखें। गुरु महाराज का कहना था कि इस रास्ते पर चले चलो पर थकान नहीं आनी चाहिए। मंज़िल कब हासिल होगी – एक जन्म में, दो जन्म में, दस जन्म में– इसकी चिन्ता मत करो। चलते चलो और संजीदगी (गम्भीरता) के साथ चलो। लगन के साथ होश संभाले हुए संत समान महापुरुषों की सोहबत करो और चलते चलो। एक कवि के शब्दों में –

'मंजिल मिले, मिले न मिले इसका डर नहीं।
मंजिल की जुस्तजु में मेरा कारवाँ तो है।।'

संसार के प्रति जितनी जल्दी थकावट आ जाए अर्थात् वास्तविक रूप से मन में विवेक और वैराग्य उत्पन्न हो जाए, उतना ही अच्छा है क्योंकि बिना विवेक और सतत अभ्यास के वह सूरज दिखाई नहीं देगा यानी आत्मिक ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा। वह भीतर में है परन्तु वह विकसित नहीं हो रहा है। अर्जुन भगवान से यही प्रश्न तो करता है कि 'प्रभु, मेरा मन मेरे काबू में नहीं है, यह कैसे वश में किया जाये'? यह प्रश्न केवल एक ही व्यक्ति या साधक का नहीं है। अर्जुन ने सारे विश्व का प्रतीक होकर पूछा था कि –'मेरा मन काबू में नहीं आता, मैं क्या करूँ?' गीता के दूसरे अध्याय में भगवान सुना चुके हैं स्थितप्रज्ञ दशा में कैसा रहना चाहिए। वह क्या अवस्था है, उसके लिए क्या कुछ करना है – यह उपदेश अर्जुन सुन चुका था। तब भी यह उपदेश उसके भीतर बसा नहीं है। वह आगे चलकर पूछता है कि – 'भगवान, मैं करूँ क्या? अपने अतीत से मुक्त नहीं हो पा रहा हूँ। मेरे भीतर में राग–द्वेष तथा अन्य कमजोरियाँ भी हैं और इन्द्रियाँ जो हैं वह भी कामनाओं में फँसी हुई हैं। मन इन्द्रियों का साथ देता है तथा बुद्धि की आवाज़ नहीं सुनता है। यह सब बातें मुझसे नहीं हो पा रही हैं।'

अर्जुन सारा उपदेश तो सुन चुका है और उस समय कुछ संतुष्टि भी हो चुकी है। जब भगवान ने ललकारा है कि अब वह अपना कर्त्तव्य–कर्म करे, फिर भी यही बात करता है। अभी यह बातें उसके हृदय में जमी नहीं। जमती कैसे? उस प्रकार आचरण करके स्वभाव बने तभी तो जमे। बुद्धि के स्तर तक बात समझ आ जाये वह भी शुक्र है। परन्तु वह व्यवहार में आ जाये, वह हमसे होता नहीं। कितने दिन हो गये हमें पाठ–पूजा करते हुए, साधना करते हुए। एक अक्षर भी तो नहीं बसा हमारे जीवन में, व्यवहार में।

इसी दशा को व्यक्त करते हुए अर्जुन भगवान से पूछ रहा है क्या करूँ और भगवान कितनी सरलता से कहते हैं जैसे मातापिता अपने

बच्चों को समझाते हैं, उसे डाँटा नहीं है। बड़ी ही वात्सल्यमयी सरलता से भगवान फिर समझाते हैं। महापुरुष डाँटते नहीं हैं। संसारी लोगों को जानते हैं। वह भी इन बातों से, इन कमज़ोरियों से गुज़र चुके होते हैं। इसलिये वे हम पर नाराज़ नहीं होते हैं और बड़े प्रेम से समझाते रहते हैं। भगवान भी उतनी ही सरलता से अर्जुन को कह रहे हैं–''प्रिय पार्थ, वायु तो हाथ में आ सकती है परन्तु यह मन नहीं आ सकता है। मन ऐसी वस्तु नहीं है कि जल्दी से वश में आ जाये। मन तो सारे अतीत का प्रतीक है, सारी इच्छाओं का भण्डार है। सारे राग–द्वेषों, दोष अवगुणों व चंचलता का प्रतीक है। कितनी बुरी या अच्छी आदतें हैं सब मिलाकर एक 'मन' के शब्द में आ जाती हैं। तामसिक गुण भी हैं, राजसिक और सात्विक गुण भी हैं। इन तीनों गुणों की मिलौनी माया कहलाती है। उसका चलाने वाला– संवाहक मन है। और वह मन ही इन तीनों गुणों को विकसित या पोषित करता रहता है। इसी से मनुष्य तंग आ जाता है, पागल सा हो जाता है। अतएव, सबसे पहले कर्त्तव्य कर्म करके इस मायावी मन को साधना अति आवश्यक है।''

आप देखते हैं कि अधिक विचार आयें तो रात को नींद नहीं आती और दिन में तो अनगिनत विचार आते ही रहते हैं। पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि सड़क पर खड़े होकर देखो प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ बोल रहा है। उसके होंठ हिल रहे हैं। सब पागलों की तरह चले जा रहे हैं। यह सब मन की ही मनमानी चाल है। ऐसे मन को यदि चाहो कि एक बार में ही तुम काबू कर लो, यह तो असंभव है। यह समस्या कोई नई नहीं है। यह आदि काल से है। जिन युगों की हम बहुत चर्चा करते हैं – सतयुग, द्वापर, त्रेता आदि, यह बातें तब भी थीं। राक्षस और देवता उन कालों में भी थे। भगवान राम और कृष्ण के समय भी यह बातें थीं और अब भी हैं। थोड़ा सा अन्तर हो सकता है कि सतयुग में, त्रेता या द्वापर में लोग अधिक सात्विक थे। परन्तु यह कहना कि तब तामसिक या रजोगुण

नहीं थे–ऐसी बात नहीं है। हाँ, आजकल कलयुग में तामसिक वृत्ति अधिक है। परन्तु साथ–साथ रजोगुण और सात्विक वृत्ति भी विद्यमान है। अभाव किसी का नहीं है।

हम सब अर्जुन की संतान हैं और यह चाहते हैं कि ये मन जो सारे अतीत के तीनों गुणों का प्रतीक है जैसे अर्जुन चाहता है वह एक क्षण में काबू हो जाए। इसी को काबू करने के लिए तो साधना करते हैं। भाई लोग बड़ी सरलता से स्पष्ट लिखते हैं कि साधना में केवल सुबह–शाम दस–बीस मिनट बैठें या न बैठें, या किसी दिन मन नहीं करा तो साधना न भी करी। कई कई दिन हो जाते हैं साधना नहीं करते हैं। यह तो साधना नहीं है। कोई बताते हैं कि उनका काम ही ऐसा है कि वे साधना कर ही नहीं पाते। ख़ास कर बहनें कहती हैं कि उन्हें समय ही नहीं मिलता। जो लोग करते हैं यह भी ईश्वर की कृपा है कि कुछ कर तो लेते हैं। जब तक मन नहीं सधता है हम आत्मा के आयाम में प्रवेश नहीं कर पाते। किन्तु घबराने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि जब हम लोग दीक्षा लेते हैं तब शपथ लेते हैं कि हम प्रयास करेंगे–धर्म का जीवन व्यतीत करने का अधिकाधिक प्रयास करेंगे। एकदम नहीं होगा यह गुरुजन भी जानते हैं, इसलिए वही शपथ दिलाते हैं जो हम पूरी कर सके यानी यथाशक्ति प्रयास करने की।

साधक के लिए पहला कदम जो होना चाहिए वह है, जीवन के लक्ष्य के प्रति सचेत रहना। उस ध्येय का ध्वज कभी नीचा नहीं होना चाहिए यानी हमारा आदर्श जो है वह हमारे सन्मुख प्रति क्षण रहे। किन्तु होता यह है कि हम उस आदर्श को बोलते समय, खाते–पीते समय, सारे दिन काम करते समय हुए भूल जाते हैं। हम उस आदर्श को व्यवहार में – निजी बर्ताव, परिवार या समाज के साथ व्यवहार करते समय भूल जाते हैं। किसी को याद नहीं रहता उस आदर्श का मतलब है कि परमात्मा को या परमात्मा की जिस भी

रूप में हम पूजा करते हैं उस इष्ट को– सदा याद रखें। हो सके तो उस रूप के साथ तद्रूप होकर रहें। पर साथ–साथ वैराग्य और अभ्यास तो सतत चलता रहे जिसका उपदेश भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिया है।

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि वैराग्य शुरु होता है विवेक से। जब तक कि विवेक पक्का नहीं होगा वैराग्य कभी दृढ़ नहीं हो सकता। महापुरुष थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कह जाते हैं इसलिए उन्होने पहले 'वैराग्य और अभ्यास' ही बतलाया है सारी ज्ञान साधना नहीं बतायी। विवेक, वैराग्य, ज्ञान और मोक्ष इन सब का भेद नहीं बताया है। इस प्रथम कार्य अर्थात् वैराग्य शब्द में बड़ा कुछ छिपा है। वैराग्य का यह मतलब नहीं कि दुनिया से, घर से नाराज हो तो इसे त्याग कर कहीं निकल जाएँ। यह तो वैराग्य नहीं है, क्रोध है। यह अपने प्रति आघात है। अपने आप फाँसी पर चढ़ने वाली बात है। क्रोध नहीं आना चाहिए और क्रोध दूसरों पर नहीं आना चाहिए। क्रोध जब भी आए अपने आप पर आए। 'अपने आप' का मतलब यह है कि यह सोचें कि आख़िर मेरा सन्तुलन बिगड़ क्यों गया। क्रोध का मतलब यह नहीं कि दीवारों के साथ माथा पीटें। होश में आएँ कि सन्तुलन क्यों खो दिया? उसका कारण ढूँढ़कर स्वयँ को सन्तुलन में ले आएँ। यह विवेक है, हंस–गति है।

हंस क्या करता है? दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। मोती चुन लेता है, सीप को छोड़ देता है। मनुष्य को हंस–गति पाने की प्रेरणा दी जाती है। परन्तु मनुष्य का स्वभाव प्रायः यही है कि वह दूध को छोड़ देता है और पानी पीता है। नेकी को छोड़ देता है बुराई को जल्दी सीखता है। आप कहीं बैठ जाएं और देखें कि चार आदमी बैठे हुए क्या बातें कर रहे हैं – निन्दा ही निन्दा सब आलोचना ही कर रहे हैं, प्रतिक्रिया कर रहे हैं। यह पार्टी ख़राब है, वह लीडर बुरा है, यह सन्त ख़राब है, यह मेरे परिवार के लोग ख़राब हैं आदि–आदि। जब तक ऐसा करते रहेंगे तब तक वे अपने

मन को अशुद्ध करते रहेंगे। जितनी कमाई की हुई होती है सब चली जाती है– ऐसा करने से ग़र्क हो जाती है।

आपको यदि आलोचना करनी है तो अपनी करो दूसरों की निन्दा मत करो। जो आपकी निन्दा करें उन्हें इज़्ज़त दें ताकि आप सर्तक हों। आप अपनी बुराईयों को दूर करें। कबीर साहब इसलिए कहते हैं कि निंदक को अपने आंगन में बिठाओ – 'निंदो, निंदो, मोको निंदो' जितनी मेरी प्रतिक्रिया होगी जितना मेरा अपमान होगा उतना ही मैं अपने आपको जानने की कोशिश करूँगा और मैं सत्यता की ओर बढ़ूँगा। अपनी बुराईयों से मुक्त होने के लिए बहुत कुछ करना होगा, केवल सिद्धान्तों से कुछ नहीं होगा।

संक्षिप्त में जैसा भगवान ने कहा है, निवेदन करता हूँ– विवेक धारण करो– बोलने में, खाने में, देखने में सब बातों में विवेक धरो। कुछ भाई कहते कि ''हमारी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि मजबूर हो जाते हैं। विवेक धारण करें। मैं व्यापारी हूँ व्यापार करता हूँ, जिससे बहुत बुराईयाँ करनी पड़ती हैं। कहाँ जायेगा मेरा विवेक। सत्य को अपना नहीं सकता, उसके लिए हिम्मत चाहिए। हिम्मत मेरे में है नहीं। यह डर लगता है कि मैं रोटी कहाँ से खाऊँगा।'' वास्तव में ईश्वर में विश्वास नहीं है। मुश्किल तो बड़ा है विवेक का धारण करना। विवेक का मतलब है सत् को धारण करना और असत् को छोड़ना। हमारा भोजन–खान–पान यदि बुरी कमाई का है, बुरे विचारों और ग़लत काम करके मिला है तो हमारा हृदय निर्मल कैसे होगा? यह दो–चार दस मिनट बैठना तो ठीक है – परमात्मा कुछ तो कृपा करते हैं परन्तु इससे कुछ होने का नहीं। मैं जब आपको कह रहा हूँ पहले अपने आप को कह रहा हूँ। मुश्किल तो बहुत है इससे मैं आपसे सहमत हूँ। मेरी सहानुभूति है आपके साथ।

जब विवेक सध जाता है तो वैराग्य अपने आप सधने लगता है। अर्थात् विवेक द्वारा साधना में जो बातें हमें सहयोग देती हैं उनको

हम अपनाते और शेष को छोड़ते चलें तो सन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकते हैं। सन्यास आश्रम का मतलब सर मुड़ा लेना या कपड़े गेरुवे रंग के पहन लेना नहीं है। सर को मूड़ने का मतलब है एक भी इच्छा न रहे, संसार के साथ मोह टूट जाए, निर्मलता आ जाये। गेरुवा रंग आत्मा का प्रतीक है, पर सचमुच आत्मरत होना है, भीतर में भी–केवल बाहर में नहीं। मगर अभी भी परिपक्वता नहीं आई है। ज्ञान तो शुरू होगा जब कि आत्मा की समीपता मिलेगी। अभी भी मन धोखा दे सकता है। आत्मा के स्थान में स्थिर रहना, निरन्तर स्थिर रहकर प्रयास करते जाना है, तब एक दिन ऐसा आयेगा कि मोह छूटेगा। गीता में बड़ा समझाया गया है इस मोह को छोड़ने के लिए। अहंकार छूट गया, इच्छायें छूट गयीं, राग द्वेष छूट गया, परन्तु सबसे ज़्यादा मुश्किल आती है 'मेरापन तेरापन' छोड़ने में।

अब उस सूरज रूपी सन्यासी को सिवाय अपनी आत्मा के, परमात्मा के, अन्य कुछ दिखता ही नहीं, भाता ही नहीं। विचार भी नहीं आते हैं। सब जगह अपना ही अपना रूप है, सब जगह आत्म प्रकाश ही आत्म प्रकाश है। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर ही नहीं है। बीच में जो 'मैं' था वह भी ख़त्म हो गया है। वह सोचता नहीं है कि मैं और परमात्मा अलहदा है। 'मैं' है ही नहीं तो सोचेगा कौन? परमात्मा ही परमात्मा रह जाता है। इसके आगे एक और स्थिति आती है, वह सब के साथ नहीं आती है। जिनसे कुछ काम लेना होता है प्रभु उनको दोबारा संसार में भेज देते हैं और फिर यह सोद्देश्य जीवन यात्रा संसार में दोबारा करवाते हैं। एक मार्ग दर्शक बनना होता है। उनको Duty (उत्तरदायित्व) दी जाती है कि वह दूसरों का भी उद्धार करें। यह परमात्मा का, प्रकृति का तरीका है।

कितने दयालु हैं परमात्मा। आप तो स्वयं कर नहीं रहे हैं परन्तु ऐसी महान आत्माओं द्वारा करवाते हैं, जो हमारे जैसे व्यक्ति लगें, जो हमारी भाषा समझते और बोलते हों। हमारे यहाँ इन विभूतियों

को अवतारी पुरुष कहते हैं, सूफियों में कहते हैं ''हम–अज़–ओस्त'' पहले हम ओस्त हो जाते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं वही हूँ) जो यहाँ कहा नहीं जाता, केवल मौन में ही व्यक्त हो जाता है। एकता भी एकांगी स्वार्थ है लोक कल्याण हेतु तो सेवा भी करनी चाहिए। ऐसा बन करके दूसरों को भी बनाने की कोशिश करनी चाहिए। वह 'हम–अज़–ओस्त' (मैं हूँ) ठीक है। जैसे लॉर्ड क्राइस्ट कहते हैं ''मैं और मेरे पिता एक हैं'' ठीक है। वह प्रभु के बेटे बनकर या सेवक बनकर संसार की सेवा करते हैं।

पूज्य गुरु महाराज का उपदेश था कि यह यात्रा बड़ी लम्बी है परन्तु घबरायें नहीं अपने लक्ष्य का जो ध्वज है उसको उठाये चलें, बढ़ते रहें। छोटे–छोटे तथा प्रतिदिन के साधारण काम करते समय भी कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। सबसे प्रमुख खाना खाने की बात लें। जब हम खाना खाने बैठते हैं कम से कम उस समय बातचीत न करें। स्वच्छ होकर पूर्णतः शान्त मन से, प्रभु के ध्यान में, शुद्ध कमाई का भोजन करें। यथासम्भव शाकाहारी, कम तला और कम मिर्च मसालों वाला आहार साधकों के लिये अधिक उपयोगी है। हमारा पुराना तरीका था कि प्रत्येक व्यक्ति अपना भोजन स्वयं बनाता था। नहा धोकर स्वच्छ स्थान पर, स्वयं अपने हाथों से भोजन बनाना और ईश्वर की याद के साथ भोजन तैयार करना बहुत सुन्दर रिवाज था।

अब आजकल जो हमारे घरों में हो रहा है वह बहुत हानिकारक है। जब हम भोजन खाते हैं, उसके साथ जो कुछ हमारी आँखें देखती हैं, जो हमारे कान सुनते हैं, जो मन में भाव–भावनायें होती हैं – वह सब भी हमारे भीतर में साथ जाता है, बल्कि उसका प्रभाव अधिक होता है। वह हमारी भीतर की शुद्धि नहीं होने देता। भोजन भी साधना का एक मुख्य अंग है ताकि हम अपने अन्तर को शुद्ध कर सकें। कहा जाता है : ''जैसा होगा अन्न वैसा होगा मन''।

पुनः निवेदन कर रहा हूँ कि यात्रा लम्बी है– घबरायें नहीं, चलते चलें रुकें नहीं। पूज्य गुरु महाराज के शब्दों को भूले नहीं। हमारी यह वृत्तियाँ एक दिन में खत्म नहीं होगीं। अपनी वृत्तियों से परेशान न हों वह तो धीरे–धीरे ही खत्म होंगी। हाँ, कोशिश करते रहें, कोशिश करते हुए आपका रोना भी ठीक है, ये रोना भी आपकी सहायता करेगा। भगवान के चरणों में बैठकर खूब रोना चाहिए। जब भी घबराहट आये उस वक्त खूब रोना चाहिये। पश्चात्ताप और विरह की पवित्र अग्नि में जलना चाहिए। इससे हमारा चित्त निर्मल होता है। इससे सुलभ और कोई तरीका नहीं।

महापुरुषों की विरह की वाणी पढ़नी चाहिए। सभी भक्तों–संतों ने अपनी रचनाओं का सृजन प्रभु प्रेम की पीड़ा में निकलती हुई अश्रुधारा से किया है, जिनका पठन–पाठन, श्रवण–गायन आज भी हमें आत्मविभोर करने में सक्षम है। हमें भी पश्चात्ताप और प्रार्थना के आँसुओं से अपनी वृत्तियों को धोना है, फिर निर्मल होकर हिरन की नाभि में छिपी कस्तूरी वाले सत्य को (अपने भीतर में समाये 'आत्मतत्व' को) पहचान कर और भटकना छोड़कर परमार्थ पथ की साधना में लगे रहना है। 'सत्य' को जानते फिर इस मार्ग पर बिना निराशा या घबराहट के, अटल विश्वासपूर्वक चलते रहें। 'मंजिल' कभी न कभी तो मिलेगी ही।

गुरुदेव आपका कल्याण करें।

□□□□

संस्मरण

दिव्य देन

'जा पर कृपा राम की होय...तापे कृपा करे सब कोये'

उन दिनों मैं भभुआ में अकेले ही रहता था। आर्थिक परेशानियाँ काफी थी इसलिए अक्सर परेशान रहा करता था। दिसम्बर 1980 में पूज्य गुरुदेव डा. करतार सिंह जी साहब वाराणसी पधारे, वहीं दिनेश बाबू ने मेरा परिचय उनसे करवाया और मेरी दीक्षा भी वहीं हुई। पहली मुलाकात में ही मैं उनका और वे मेरे हो गये। उन्होंने मुझसे कहा ''आप भंडारे पर आते रहें।'' मैंने उनके आदेश का अक्षरक्षः पालन किया।

दूसरा भंडारा भभुआ में हुआ। मैं बड़ी उमंग व लगन के साथ भंडारे में सेवा कार्य करने लगा। अंतिम दिन बसंत था सभी सत्संगी भाई बहन एक दूसरे को अबीर गुलाल से रंग रहे थे। मैं तो लाल रंग में ऊपर से नीचे तक रंगा हुआ था। इसी बीच गुरुदेव वहाँ आये। उन्हें देखकर मैं इतना भावुक हो गया कि मना करने के बावजूद भी उनके पैरों पर गिर पड़ा। पूज्य गुरुदेव ने मुझे उठाते हुए बड़े मीठे स्वर में कहा ''अरे ये तो मेरा हनुमान है'' बस तभी से सारे भाई बहन मुझे हनुमान बुलाने लगे।

1. सन् 1984 में मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया। सब भाई बहनों में सबसे बड़ा होने के कारण परिवार का सारा बोझ मेरे कंधों पर आ गया। बहन विवाह योग्य थी। उसका विवाह करने का दायित्व भी अब मेरा था। तभी गुरुदेव का एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि 'जब मैं पिता हूँ तो मेरे रहते आपको क्या परेशानी?' पिताजी का श्राद्ध करने के बाद मैं दिल्ली गुरुदेव से मिलने गया। मैं कुछ कहता उससे पहले उन्होंने फ्रिज से निकालकर एक काला जामुन मेरे मुँह में डाल दिया और कहा कि 'मैं आपसे कहता हूँ कि आप सारी

समस्या हम पर छोड़ दें’ वे बोले ‘आप बहन के लिए लड़का देखें शादी हो जायेगी। कुछ समय बाद एक ब्राह्मण परिवार में बहन की शादी की बात चली। मैं अपने मामाजी के साथ उनसे मिलने पहुँचा। संयोग की बात है कि उसी समय खबर आई कि लड़के के बड़े पापा का एक्सीडेंट हो गया है। वे लोग घबरा गये और रोने लगे। मैं उसी समय उनकी पत्नी को लेकर सासाराम के सदर अस्पताल पहुँचा, जहाँ उन्हें भर्ती किया गया था। पन्द्रह दिन तक उनकी सेवा व देखभाल की। इसी बीच उन्होंने कहा कि आप अपनी बहन को हमें दिखला सकते हैं। मैंने गाँव से बहन को बुलाकर दिखला दिया। देखने के बाद उन्होंने अपनी मंजूरी दे दी और बोले कि ‘यदि मैं जिन्दा रहा तो बड़ी धूमधाम से यह विवाह करूँगा।’ परन्तु होनी को कुछ और ही मंजूर था। अचानक उन्हें टिटनस हो गया और मैं उन्हें लेकर बनारस हॉस्पिटल गया और जो भी सेवा बन पड़ी वह की किन्तु वे इस दुनिया से चले गये। अब तो हम निराश हो गये, लगा कि शादी तो अब होने से रही। उनकी पत्नी ने हमें आश्वासन दिया कि शादी आपके यहाँ ही होगी किन्तु परिवार के अन्य लोग शादी के लिये तैयार नहीं थे। उन्हीं दिनों भभुआ में भंडारा हुआ और गुरुदेव वहाँ पधारे। मैंने मौका देखकर घर के मालिक श्री सुरेश पांडे जी को पूज्य गुरुदेव से मिलवा दिया। गुरुदेव ने उनसे कहा कि ‘आप शादी कर लें तिवारी जी बहुत नेक व्यक्ति हैं। आपको गुरुदेव मालामाल कर देंगे।’ और इस प्रकार पूज्य गुरुदेव की कृपा से बहन का विवाह पक्का हो गया। मेरी आर्थिक स्थिति को जानते हुए मेरे महादानी गुरूदेव ने भुवन बाबू से कहा कि ‘आप देख लें विवाह में कितना खर्चा आयेगा, मैं भेज दूँगा।’ भुवन बाबू के लिये तो इशारा ही काफी था, वे अपने घर से ही तिलक का सारा सामान तैयार करके ले आये। धूमधाम से तिलक व फिर विवाह सम्पन्न हो गया।

2. पूज्य गुरुदेव की कृपा का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। मेरे विवाह को बारह वर्ष हो गये थे किन्तु कोई

संतान नहीं थी। इसे लेकर मेरी पत्नी काफी दुखी रहती थी। 1981 के भंडारे में श्री दिनेश बाबू ने इस विषय में पूज्य गुरुदेव से निवेदन किया। गुरुदेव मुस्कुराये और बड़े प्रेम से बोले 'यह चिन्ता मुझे होनी चाहिए, इन्हें चिन्ता करने की क्या आवश्यकता'। इसके बाद एक अजीब खेल खेला। भंडारे के बाद मैं दिल्ली में ही रुक गया। एक दिन गुरुदेव मुझे अपने साथ श्री सतीश वर्मा जी के घर ले गए और वहाँ मुझे भजन पढ़ने को कहा। मैंने पढ़ा– 'विनती यही प्रभु जी......'

सतीश बाबू जी की माता जी जो खाट पर लेटी थी, उठकर बैठ गई और बड़े प्यार से कहा 'बड़ा अच्छा भजन पढ़ते हो'। उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई एवं सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया 'फूलोफलो'। लौटकर आने के बाद पूज्य गुरुदेव ने बताया कि यह भजन माता जी का ही लिखा हुआ है और कहा कि 'अब तो माता जी ने आपको आशीर्वाद भी दे दिया है।' उनकी कृपा से ठीक एक वर्ष बाद मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। सारे सत्संग में यह खबर फैल गई कि हनुमान जी को पुत्र हुआ है। उनकी कृपा का वर्णन कितना करूँ कम ही होगा। ऐसी ऐसी कृपा मुझ पर की जिसका वर्णन करते हुए अश्रु थमते ही नहीं। जब बेटा तीन वर्ष का हुआ तब एक दिन खेलते–खेलते छत से एकाएक नीचे गिर पड़ा। उल्टी हुई और बेहोश हो गया। किन्तु थोड़ी ही देर में उठ बैठा और बोला 'माँ मैं ठीक हूँ'। यह बात मैंने पूज्य गुरुदेव को बताई तो उन्होंने उसे एक सेब दिया और गले में माला पहनाकर कोई दवा मुँह में डाली और कहा कि 'इसे कुछ नहीं होगा।' पूज्य गुरुदेव ने बसंत के दिन पुत्र का स्वयं नामकरण भी किया और नाम रखा 'राम प्रसाद'। यह उनकी दयालुता नहीं तो और क्या है। वह सदैव कहा करते थे कि जो सत्संग की सेवा करता है गुरुदेव सदैव उसकी रक्षा करते हैं।

3. वर्ष 2006 में गुरुदेव का आदेश हुआ कि एक जरूरतमंद गरीब परिवार की बेटी से पुत्र की शादी कर देना। मैंने घर पर यह बात किसी को नहीं बताई। वर्ष 2008 में इसी तरह का एक परिवार मेरे संपर्क में आया। मुझे गुरुदेव की बात याद आ गई। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि इसी परिवार की लड़की से बेटे का विवाह करूँगा। परिवारीजनों की रजामन्दी न होते हुए भी गुरुदेव का आदेश समझ हमने यह विवाह कर दिया। पूज्य गुरुदेव को जब यह पता चला तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए।

शादी के ग्यारह माह पश्चात्त ही मेरी पत्नी का देहांत हो गया। उस समय मेरी बहु के बच्चा होने वाला था। बेटी भी विवाह योग्य थी। मैं बहुत घबड़ाया कि यह सब जिम्मेदारियाँ मैं अकेले कैसे निभा पाऊँगा। पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा से सब कार्य सरलतापूर्वक हो गये। बहु ने बड़ी कुशलता से सारी घर गृहस्थी को संभाल लिया और बेटी का विवाह भी बिना किसी प्रयास के 2011 में हो गया। मेरे प्रभु अंतर्यामी थे, सब कुछ जानते थे। खेल–खेल में संस्कार कटवा देते थे। धन्य है प्रभु, धन्य है आपकी लीला। ऐसे थे हमारे गुरुदेव। आज भी उनकी याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

– हरीशंकर तिवारी, सासाराम, बिहार

'ऐसी होती है गुरु की रहमत ...वाह रे तेरी रहमत!

1.सन् 2009 की बात है, मेरे पतिदेव श्री मदन प्रसाद सिन्हा जो पटना संग्रहालय में कार्यरत थे, 31 जनवरी को अवकाश प्राप्त करने वाले थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद हमारी मकान बनाने की योजना थी, किन्तु आर्थिक लाभ मिलने में देर हो गयी और पर्व त्योहार का समय आ गया। दीपावली नजदीक आ गई थी इसलिए जिस पुराने घर में मैं रहती थी उसी की साफ–सफाई करने में जुट गई। उसी दौरान मैं रसोई में फिसल कर गिर पड़ी। रीढ़ की हड्डी में ऐसी चोट लगी कि ठीक से खड़ी भी नहीं हो पा रही थी, कराह

उठी थी। बड़ी मुश्किल से एम्बुलेंस द्वारा एक्सरे कराने जा सकी। एक्सरे से पता चला कि रीढ़ की बगल वाली दो हड्डीयाँ टूट गई हैं। मैं बेहद घबरा गई, आँखों से अश्रुधारा बह चली, लगा कि अब कभी खड़ी नहीं हो पाऊँगी। किसी डाक्टर ने ऑपरेशन की भी सलाह दे दी। जिन्दगी बोझ सी लगने लगी। पतिदेव बहुत ढाँढस बँधाते। पूज्य गुरुदेव को भी पत्र द्वारा सूचित कर दिया गया। फोन द्वारा भी उनसे संपर्क लगातार बनाये रखा। गुरुदेव के ही आशीर्वाद से एक अन्य डाक्टर डा. एन. के. सिंह को दिखाया गया। उनके इलाज से बिना ऑपरेशन के ही मैं खड़ी होने में सक्षम हो सकी। हाँ कुछ समय तो जरूर लगा। पहले बेल्ट के सहारे खड़ी हुई और बाद में धीरे-धीरे बेल्ट के बिना ही चलने फिरने लगी और आज मैं पूर्ण रूप से ठीक हूँ। आज मैं अपने नये मकान में स्वस्थ होकर रह रही हूँ। सबसे खुशी की बात यह है कि भण्डारे में भी आती जाती हूँ।

यह सब उन्हीं की रहमत और कृपा है, जिसके बिना यह सब होना सम्भव नहीं था।

2. मेरी भतीजी की शादी हजारीबाग से होने वाली थी। हम दोनों बहनें काफी खुश थीं। शादी में जाने के लिए हम लोगों ने सारी तैयारियाँ पूरी कर ली थीं। अगले दिन हजारीबाग के लिए रवाना होना था। पर ये क्या! रात्रि में ही मेरे पेट में अचानक तीव्र दर्द होने लगा। धीरे-धीरे दर्द असहनीय होता जा रहा था और साथ में उल्टी भी होने लगी। जाड़े की रात थी, घर में कोई दवा वगैरह भी उपलब्ध नहीं थी। रात भर काफी परेशान रही। मैं पूज्य गुरुदेव को याद करने लगी। तभी मन में ख्याल आया कि मैं भण्डारे का प्रसाद ग्रहण करूँ और मैंने वैसा ही किया। दवा की जगह भण्डारे का प्रसाद ग्रहण (मिश्री) किया और वह मेरे लिए रामबाण सिद्ध हुआ। दर्द से राहत मिल गई और नींद आ गई। सुबह मैं भली चंगी थी। शादी में भी खुशी-खुशी समिलित हुई। गुरुदेव की प्रेरणा से ही

प्रसाद ग्रहण करने का ख्याल आया। आज भी वो असह्नीय दर्द और प्रसाद से राहत की बात भुलाये नहीं भूलती। किस किस तरह से गुरुदेव हम लोगों पर अपनी रहमत की वर्षा करते हैं, हम मूढ़ अज्ञानी क्या समझ पायेंगे। – जयन्ती सिन्हा, हाजीपुर (बिहार)

जाको राखे साईंयाँ ...मार सके न कोए

1. वर्ष 1991 की बात है देवघर में बड़े भाई अंचलाधिकारी के रूप में पदस्थापित थे। सरकारी जीप से हम लोग देवघर मंदिर से घर लौट रहे थे। गेट पर ड्राइवर उतरकर गेट खोलने लगा इस बीच मैं ड्राइवर की सीट पर बैठ गया, सोचा कि ब्रेक पर पैर रख देता हूँ ताकि गाड़ी रूकी रहे परन्तु वह पैर एक्सीलेटर पर पड़ गया और गाड़ी तेजी से आगे बढ़ गई। जीप में मैं और मेरे भैया भाभी सवार थे। गाड़ी आगे जाकर एक पेड़ की डाली से जा टकराई तो भैया बोले कि 'देखो टकराए नहीं' मैने और अधिक मजबूती से पैर दबा दिया। इससे गाड़ी और तेज हो गयी। सामने मकान था पर ज़रा सा बायें होकर एक गड्डे में जाकर गाड़ी ऊपर चढ़ने लगी। सामने बाउन्ड्री थी और बाउन्ड्री के दूसरी ओर कुंआ था। तभी बाउन्ड्री की दीवार टूट गई और ईटों का ढेर लग गया जिससे टकराकर गाड़ी रूक गई। तब हम लोग उतरे, लेकिन किसी को कोई क्षति नहीं हुई। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव ने रक्षा करके जीवन दान दिया।

2. सन् 1987 की बात है। एक बार पूज्य गुरुदेव जी महाराज को मैंने पत्र लिखा कि मैं पथ निर्माण विभाग में कार्य करता हूँ। मेरी दो पुत्री है। पैसे के अभाव में पुत्री की शादी कैसे होगी। उत्तर में मुझे आदेश मिला कि आप चिन्ता न करें आपकी दोनों बेटियों की शादी समय पर हो जाएगी। पर ठेकेदारों से जो पैसा आता है, वह मेरी समझ में ठीक नहीं है। कुछ दिनों बाद मैंने पूज्य श्री कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव जी से पूछा कि यह पैसा लेने से क्या होता है। उन्होंने कहा कि 'कभी ऐसा करके देख लेना दाग लग जाएगा।'

मैं जहाँ पटना में पदस्थापित था, वहाँ मेरा स्टाफ कहता था कि पैसे देने के लिए लोग आते हैं पर आपसे कोई नहीं मिलता। मुझे यकीन नहीं होता था। एक बार परीक्षा लेने के लिए मैंने अपने स्टॉफ से कहा कि मैं जानना चाहता हूँ कि कौन आता है और कितना पैसा देता है। दूसरे दिन उसने मुझे 10,000 रुपये की गड्डी लाकर दिखाई। मैंने कहा कि इसे वापस ले लो मुझे 400/– मात्र निकालकर दे दो। उसने वैसा ही किया। उस 400 रुपये को लेकर घर से बाहर जैसे ही निकला एक परिचित आदमी से गली में मुलाकात हो गई। मैंने कुशल समाचार पूछा तो बोले कि एक जगह शादी में आया हूँ, आपके सामने वाले रिश्तेदार है उन्हीं के यहाँ ठहारा हूँ। तब मैंने पूछा 'इधर कहाँ जा रहे हैं?' तो वे बोले कि 'घर जाने के लिए पैसा नहीं है। मैं कान की बाली सुनार के यहाँ बेचने जा रहा हूँ।' मैनें पूछा 'आपको भाड़े के लिए कितने पैसों की जरूरत है', उन्होंने 400/– बताया। मैंने तुरंत 400/– जो परीक्षा हेतु स्टाफ से लिये थे उन्हें दे दिये। वे चले गए इस प्रकार मैंने अपने पास कुछ भी नहीं रखा। दूसरे दिन मेरी छोटी बच्ची स्कूल जाते हुए साईकिल से टकरा गई। उसका ललाट फट गया खून गिरने लगा। वही स्टाफ वहाँ से गुजर रहा था। स्कूटर से उसे अस्पताल ले गया और मुझे बुलाने के लिए अपने छोटे भाई को भेजा। उसके ललाट पर छोटा सा टाँका देना पड़ा। चोट तो ठीक हो गई पर उसका दाग अभी तक है और मुझे हमेशा याद दिलाता रहता है कि भूलकर भी गुरू की कही बातों की परीक्षा नहीं लेनी चाहिए अन्यथा जीवन भर पछताना पड़ता है।

3. गर्दनीबाग गेट लाइब्रेरी में भण्डारा था। काफी घना कुहासा पड़ रहा था। वहाँ पर मुझे शौचालय मरम्मत व देख–रेख का कार्य सौंपा गया था। उन्हीं दिनों मेरा मकान भी बन रहा था, लेन्टर तक कार्य हो गया था, बाकी कार्य शुरू होना था। काम शुरु करने के लिए

रोज ठेकेदार के पास जाता लेकिन वह टाल जाता। उसके कारण मैं देर से गेट लाइब्रेरी पहुँचता था। एक दिन श्री कृष्णकान्त उर्फ बिजली चाचा जो उमा चाचा के भाई हैं उन्होनें कहा कि 'आप को भण्डारे का कार्य दिया गया है वही चुपचाप कीजिए दूसरे कार्य को छोड़ दीजिए।' मैनें भी सोचा कि इतने चक्कर लगाने पर भी ठेकेदार काम नहीं कर रहा है सो मैनें जाना छोड़ दिया और भण्डारे के काम में जीजान से जुट गया। भण्डारा समाप्त हो गया तो मैं कार्यालय गया मेरे सहकर्मी बोले कि 'तुम्हारी छत की ढ़लाई कब होगी'? चूँकि मैं 20 दिनों से उधर नहीं गया था, इसलिए मैंने सोचा कि व्यंग कर रहे हैं। मैंने कहा 'दिवाल बनेगा तब न छत बनेगी।' तब उन्होंने कहा कि 'तुम गए नहीं हो तुम्हारा तो छत का शटरिंग तैयार है जाकर देखो।' मैं गया तो देखकर आश्चर्य चकित हो गया कि दीवारें बनकर तैयार थीं। ठेकेदार से पूछा कि सीमेन्ट कहां से लाए तो वह बोला कि 'आप जहाँ रहते हैं वहाँ 15–20 बोरा सीमेन्ट रखा था'। मैंने पूछा कि 'किसका है?' वह बोला कि उसे नहीं मालूम लेकिन सारा सीमेन्ट लगकर दिवाल तैयार हो चुकी थी। जब पता किया तो मालुम हुआ कि वो सीमेंन्ट की बोरियाँ सामने रहने वाले व्यक्ति की थीं। बग़ैर इज़ाज़त के इस्तेमाल में लाने के लिए जब उनसे क्षमा माँगने गया तो वे बोले कि 'कोई बात नहीं है जब जरूरत होगी आपसे वापस ले लेगें'। इस प्रकार मकान बनकर तैयार हो गया। भण्डारे में कार्य का बदला अपने आप मिल गया। जो रोज़–रोज़ जाने से भी नहीं होता था वह कार्य गुरुदेव ने स्वयं करा दिया। ऐसे पूज्य गुरूदेव अपने शिष्यों का भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

– सुबित कुमार सिन्हा, पटना, बिहार

गुरु परमेश्वर एको जानो!

कहते हैं संतों की दुनिया अद्‌भुत, अगम्य और अगोचर होती है। उसको समझना सामान्य सांसारिक व्यक्ति के लिए असंभव है। इन्हीं

संतों में परमसंत डा. करतार सिंह जी साहब थे। उनका जीवन बहुत साधारण, अति उच्च विचारों और आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत था। बाहर से सामान्य से दिखने वाले वे अंतर में धार्मिक, आध्यात्मिक और उच्चकोटि के मर्मज्ञ, ज्ञानी परमात्मा रूप ही थे। मैं 1980 में उनके सम्पर्क में आया। तभी उन्होंने मुझे और मेरी पत्नी श्रीमती रघुवंशलता कुलश्रेष्ठ को दीक्षा देकर सदा के लिए अपना लिया। उससे हम दोनों का जीवन सुधर गया।

उन दिनों मेरी नियुक्ति पटना में गृह मंत्रालय में सहायक निदेशक के पद पर थी। मैं पटना से दिल्ली सत्संग व भंडारे में आया करता था। एक दिन मैं सत्संग के पश्चात्त गुरुजी के कमरे में बैठा था। आदरणीय गुरुजी ने पूछा 'दिल्ली कब आ रहे हो? अब दिल्ली के लिए स्थानान्तरण करवा लो।'

मैं उनसे मिलकर वहाँ से दिल्ली में अपने मुख्यालय (केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान सी.जी.ओ परिसर) गया और श्री विनोद कुमार जो उस समय निदेशक के पद पर आसीन थे, से मिला। मुझे देखकर वे बोले 'मैं आपको ही याद कर रहा था, आपकी पदोन्नति हो रही है। आप मुख्यालय (दिल्ली) में आ जाइए। आप यहाँ का कार्य सरलता से संभाल लेंगे और सभी क्षेत्रों के उपनिदेशकों को आवश्यक निर्देश दे सकेंगे।' मुझे गुरुदेव की कही हुई बात याद आ गई। मेरे गुरुदेव तो अर्न्तयामी हैं, उन्होंने पहले ही सब जान लिया था। मैंने तुरन्त अपनी सहमति दे दी और पदोन्नति के बाद मैं अक्टूबर 1993 में दिल्ली आ गया। यहाँ आकर सुबह-शाम का सत्संग मिलने लगा। इसके साथ ही गुरुदेव की कृपा और प्रेम भी निरन्तर मिलता रहा। सत्लोक में विराजमान गुरुदेव की कृपा और उनका फ़ैज हम सब पर हमेशा यूँ ही बरसता रहे यही मेरी कामना है।

– श्री डी. एन. कुलश्रेष्ठ, नई दिल्ली

सुख का मार्ग

हम दुखी क्यों होते हैं? क्या ईश्वर ने दुख प्रदान करने वाले पदार्थों का निर्माण हमारे लिए किया है? ईश्वर ने तो हमें निर्मल मन, निश्चल देह व गंगा सा पवित्र आनंदमय कानन–कुसुमयुक्त जीवन दिया था। फिर इस सुख में बिना बुलाये दुख आया कैसे? कौन है इसका निर्माता और कौन है इसके लिए जिम्मेदार? सच तो यह है कि मनुष्य ने स्वयं ही कामनाओं का यह मकड़जाल बुना है और स्वयं ही इसमें फँसकर छटपटा रहा है। ईश्वर ने हमें तपस्वी मन व सशक्त काया दी थी। इसको संग्रही व भोगी हमने बनाया। सुख की चाहत में परिवार, धन–दौलत, जायदाद व अपेक्षा–कामनाओं का अभयारण हमने बसाया। अब इसके हानि लाभों से स्वंय हमें ही रूबरू होना पड़ेगा। जीवन के हर मार्ग व मोड़ पर शाश्वत सुख व शाश्वत दुख दोनों ही हमारे स्वागत के लिए सदैव खड़े रहते हैं।

असली सुख का मार्ग हमसे दूर छूटता चला गया और हमने दुखमय मार्ग को ही अज्ञानता के अंधकार से प्रेरित होकर सुख सदृश मान लिया। छलावा तो महज छल सकता है। जैसे निंद्रा में भव्य स्वर्ण महलों की प्राप्ति, जो स्वप्न टूटते ही खंड–खंड होकर असलियत या यथार्थ से साक्षात्कार करा देता है। इस संपूर्ण दुखमय सृष्टि का निर्माण व आमंत्रण केवल हमने ही किया है। इससे पनपने वाला हर भाव, स्वभाव, उत्पाद, संबंध व विस्तार दुखमय ही होगा। सुख का मार्ग ईश–भजन की नाव में बैठकर, सांसारिक विस्तार को भुलाकर, सनातन आनंद के उस लोक का दिव्य–दर्शन है, जहां दुख, पीड़ा, पश्चाताप व संताप पनप ही नहीं सकते।

– जागरण से साभार